
इकाई 2 मोक्ष का अर्थ और सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 अवैदिक परम्परा में मोक्ष
 - 2.2.1 चार्वाक दर्शन में मोक्ष
 - 2.2.1 जैनदर्शन में मोक्ष
 - 2.2.3 बौद्धदर्शन में मोक्ष
- 2.3 वैदिक परम्परा में मोक्ष
 - 2.3.1 औपनिषदिक मोक्ष चिन्तन
 - 2.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ का आदर्श
 - 2.3.3 सांख्ययोग दर्शन में कैवल्य अथवा मोक्ष चिन्तन
 - 2.3.4 न्यायवैशेषिक में मोक्ष विचार
 - 2.3.5 मीमांसादर्शन में मोक्ष चिन्तन
 - 2.3.6 अद्वैत वेदान्त में मोक्ष का स्वरूप
 - 2.3.7 राजानुज के दर्शन में मोक्ष
- 2.4 सारांश
- 2.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 2.6 सन्दर्भग्रन्थ
- 2.7 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- हिन्दू जीवनपद्धति के सर्वोच्च आदर्श मोक्ष का अर्थ एवं अवधारणा को जान सकेंगे।
- विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं द्वारा विकसित मोक्ष की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- मोक्ष की अवधारणा एवं अर्थ से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर लिख सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने पुनर्जन्म की अवधारणा को पढ़ा है। जिस जीव का पुनर्जन्म नहीं होता, उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई होती है। इस इकाई में हम आपको मोक्ष के अर्थ को बताने जा रहे हैं। मोक्ष का अर्थ जीवन-मरण और पुनर्जन्म के चक्र से और सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है। उपनिषद् के ऋषियों ने कठोर इस सत्य का ज्ञान प्राप्त किया कि पुनः पुनः जन्म ग्रहण करना ही सभी प्रकार के दुःखों का कारण है। जन्म-ग्रहण करने की आवश्यकता का आन्त्यान्तिक अभाव हो जाना ही सभी साधनाओं का लक्ष्य है, यही मोक्ष है।

मोक्ष भारतीय दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति 'मोक्ष' धातु से 'घञ्' प्रत्यय के योग से होती है। इसका अर्थ होता है छुटकारा, स्वतंत्रता अथवा मुक्ति। जबकि मुक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'मुच्यते' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग निष्पन्न होता है। इसका अर्थ भी "स्वतन्त्र होना" या "छुटकारा पाना" है। शास्त्रों के अनुसार मोक्ष का अर्थ है— 'मुच्यते सर्वेदुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः' अर्थात् जिस पद को पाकर जीव तीन प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) तथा बन्धनों से मुक्त हो जाता है, वह मोक्ष कहलाता है।

भारतीय दर्शन को, दूसरे शब्दों में, "मोक्षशास्त्र" भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष प्राप्त करने का एक विशेष उपाय अथवा रास्ता बतलाता है। इसलिए पाश्चात्य दर्शन के विपरीत, भारतीय दर्शन केवल विचारों का एक विज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन की एक कला भी है। भारत में दर्शन और धर्म एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। एक सिद्धान्त है तो दूसरा उसके अनुसार व्यवहार है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार केवल सत्य की खोज और उसका ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जीवन में उसे उतारना और उसके अनुरूप जीवन जीना भी आवश्यक है।

भारतीय दर्शन को मूल्य दर्शन (Axiology) भी कहा जा सकता है। भारतीय मनीषियों ने चार प्रकार के मूल्य बतलाए हैं जिसे हम पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के रूप में जानते हैं। इसे हम नैतिक मूल्य (धर्म), आर्थिक मूल्य (अर्थ), मानसिक मूल्य (काम) और आध्यात्मिक मूल्य (मोक्ष) भी कह सकते हैं। इनमें से धर्म और अर्थ साधन मूल्य हैं और काम और मोक्ष साध्य मूल्य हैं। इस प्रकार भारतीय मेधा हमारे समक्ष दो मार्ग रखती है। वे हैं— सांसारिक सुखों का रास्ता (काम) और कल्याण का मार्ग (मोक्ष)।

कठोपनिषद् में इन्हें प्रेय और श्रेय मार्ग कहा गया है। औपनिषदिक ऋषियों को धर्म, अर्थ और काम सन्तुष्ट नहीं कर पाये। इसीलिए कठोपनिषद् में नचिकेता इहलौकिक (सांसारिक) और पारलौकिक (स्वर्गिक) सुखों के प्रलोभन में नहीं पड़ता। वह केवल परमतत्त्व अथवा परम सत्य को जानने का हठ करता है। बृहदारण्यकोपनिषद् के याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद में मैत्रेयी कहती है कि मैं ऐसी सम्पत्ति का क्या करूँगी जिससे मुझे अमरत्व की प्राप्ति नहीं होती।

इस प्रकार औपनिषदिक ऋषियों का मुख्य उद्देश्य मोक्ष है कोई अन्य भौतिक वस्तु नहीं। भारतीय मनीषा की यह विशेषता है कि वह मोक्ष के अतिरिक्त किसी भी वस्तु को वस्तु अथवा मूल्य को जीवन का परम शुभ या परम लक्ष्य स्वीकार करने को तैयार नहीं। मानवता और नैतिक जीवन महत्त्वपूर्ण अवश्य है परन्तु वे जीवन का परम शुभ अथवा सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है। हाँ वे साधन अवश्य हो सकते हैं।

हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतीय जीवन-पद्धति का सर्वोच्च लक्ष्य अतिसामाजिक और अतिनैतिक है जो आदर्श की स्थिति है। इसके विपरीत पाश्चात्य दार्शनिकों का चरम लक्ष्य नैतिक और सामाजिक मूल्यों और मानवता को प्राप्त करना ही रहा है। जबकि भारतीय मनीषा की अभिलाषा मानवता से ऊपर उठकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की स्थिति को प्राप्त करने की रही है।

यहाँ यह भी समझना अत्यन्त आवश्यक है कि वैदिक संस्कृति और अवैदिक संस्कृति दोनों ही जीवन-पद्धतियों में सर्वोच्च आदर्श के रूप में मोक्ष को स्वीकार किया गया है क्योंकि भारतीय संस्कृति में वर्णित चतुर्विध पुरुषार्थों में मोक्ष का स्थान सर्वोपरि है।

चार्वाक दर्शन भौतिकवादी होने के कारण मोक्ष के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। अब हम विभिन्न भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में मोक्ष के अर्थ तथा सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

2.2 अवैदिक परम्परा में मोक्ष

2.2.1 चार्वाक दर्शन में मोक्ष

चार्वाक दर्शन में मोक्ष को अपवर्ग कहा गया है। चार्वाक भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में वर्णित चतुर्विध पुरुषार्थों— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से केवल अर्थ और काम को ही स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त चार्वाक केवल इस चेतनायुक्त शरीर को आत्मा मानता है। यह शरीर केवल पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु से निर्मित है। शरीर के नष्ट हो जाने पर यह चेतना नष्ट हो जाती है। अतः उक्त चार तत्त्वों से निर्मित यह शरीर ही आत्मा है आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानता है। चूँकि ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं होता है अतः चार्वाक ईश्वर को भी नहीं मानता। यह कर्म सिद्धान्त तथा पुनर्जन्म का भी खण्डन करता है। चार्वाक प्रत्यक्षवादी होने के कारण कर्म-फल में आस्था नहीं रखता। यह शरीर के नाश होने के बाद आत्मा की स्थिति और पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करता है। चार्वाक के अनुसार यदि आत्मा मृत्यु के बाद पुनर्जन्म ग्रहण करती है तो उसे अपने पुनर्जन्म में किए गए कर्मों का स्मरण क्यों नहीं रहता है? इससे सिद्ध होता है कि आत्मा शरीर के साथ नष्ट हो जाती है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

चार्वाक के अनुसार मोक्ष परम पुरुषार्थ नहीं है। मृत्यु ही मोक्ष या अपवर्ग है (मरणमेव अपवर्गः)। सामान्यतः यह देखा जाता है कि कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। कुछ दार्शनिक दुःखों की निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं किन्तु समस्त प्रकार के दुःखों का आधार यह शरीर ही है। जब तक यह शरीर है तब तक दुःख भी है। शरीर के न रहने पर दुःख भी स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अतः शरीर का नष्ट होना ही मोक्ष है।

चार्वाक स्वर्ग और नरक की अवधारणा का भी खण्डन करता है। यदि मोक्ष या स्वर्ग का अर्थ आत्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होना है तो यह सम्भव नहीं, क्योंकि जीवित शरीर ही आत्मा है शरीर से भिन्न आत्मा का कोई स्वरूप नहीं है। चार्वाक के अनुसार मृत्यु के उपरान्त मोक्ष या जीवन रहते मोक्ष की अवधारणा निराधार है। क्योंकि यह परलोक की अवधारणा पर आधारित है और परलोक के लिए कोई प्रमाण नहीं है अतः मोक्ष स्वर्ग नरक की धारणाएँ भ्रमजन्य तथा तर्कविरुद्ध है।

2.2.1 जैनदर्शन में मोक्ष

भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताओं जैसे कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष के सिद्धान्त का अनुसरण करने के कारण जैन दर्शन भी मोक्षशास्त्र कहलाता है। यहाँ मोक्ष को प्राप्त करने में आचरण की शुद्धता का विशेष महत्त्व है। जैन दर्शन में कैवल्य (मोक्ष) को लक्ष्य माना गया है और “त्रिरत्न” उस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन हैं। कैवल्य (मोक्ष) जीव के अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार जीव एक द्रव्य है और चेतना उसका लक्षण है। जीव का मूल स्वरूप ‘अनन्तचतुष्टय’ से परिपूर्ण है। है। उसमें ‘अनन्त चतुष्टय’ अर्थात् चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती है। ये हैं— अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तआनन्द। जीव के ये स्वाभाविक गुण केवल मुक्त जीवों में अभिव्यक्त होते हैं बद्ध

जीवों में इनकी अभिव्यक्ति नहीं होती। किन्तु कर्म पुद्गलों के नष्ट हो जाने के कारण जीव के उक्त स्वाभाविक पुनः प्रकट हो जाते हैं। जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है पर बादलों के आने पर वह जगत् को प्रकाशित नहीं कर पाता। परन्तु बादलों के छटने पर वह फिर से जगत् को पुनः प्रकाशित करता है। वैसे ही जीव भी स्वभावतः पूर्ण और 'अनन्तचतुष्टय' से युक्त है किन्तु अविद्या द्वारा बन्धनग्रस्त होने के कारण उसके मूल स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। जब वह मुक्त होता है तो तब वह अपनी स्वाभाविक पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ प्रश्न है कि जीव के बन्धन का क्या अर्थ है? वह बन्धनग्रस्त क्यों होता है? इसका उत्तर है कि जैन मत में बन्धन का अर्थ है, 'जन्म ग्रहण करना' और 'जीव का शरीर से सम्बन्ध होना'। जीव और कर्मपुद्गलों का संयोग होना बन्धन है। शरीर धारण करने से या कर्मपुद्गलों से संयोग होने के कारण जीव का मूल स्वभाव (अनन्तचतुष्टय) छिप जाता है जिससे उसके स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।

जैन दर्शन के अनुसार कर्म ही बन्धन का कारण है। कर्म जीव से संयुक्त होकर उसके स्वरूप को दूषित कर देते हैं। जिसके कारण जीव अपनी शुद्धता को भूलकर बन्धन की अवस्था में आ जाता है। जीव और कर्म का संबंध अनादि है। बन्धन की प्रक्रिया में कर्म स्वतः प्रवृत्त होता है।

यहाँ स्मरण रहें कि आस्तिक दर्शनों में कर्म स्वतः निष्क्रिय है। कर्म ईश्वर की ईच्छा से ही अपना फल प्रदान करता है। जैन दर्शन में कर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ आठ प्रकार के कर्म स्वीकार किये गये हैं—

1. ज्ञानावरणीय कर्म – ज्ञान को नष्ट करने वाले कर्म।
2. दर्शनावरणीय कर्म – विश्वास नष्ट करने वाले कर्म।
3. मोहनीय कर्म – अज्ञान या मोह पैदा करने वाले कर्म।
4. वेदनीय कर्म – सुख या दुःख पैदा करने वाले कर्म।
5. गोत्रकर्म – जीव का जन्म किस गोत्र में होगा निश्चित करने वाले कर्म।
6. आयुष्कर्म – आयु निर्धारण करने वाले कर्म।
7. नामकर्म – व्यक्ति के नाम का निर्धारण करने वाले कर्म।
8. अन्तराय कर्म – बाधाएँ पैदा करने वाले कर्म।

ये सभी कर्म जीव के भीतर प्रविष्ट होकर उसे जन्म लेने के लिए बाध्य करते हैं। वह अपने कर्मों के अनुसार शरीर धारण करता है। जीव के अतीत कर्मों से वासनाएँ पैदा होती हैं। वासनाएँ तृप्त होना चाहती हैं फलतः वे पुद्गलों को अपनी ओर आकृष्ट करके जीव को शरीर से सम्बद्ध कर देती हैं।

फिर प्रश्न है कि जीव कर्म क्यों करता है? जैनदर्शन के अनुसार अविद्या ही बन्धन का कारण है। ध्यान रहें कि चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीयदर्शन के सम्प्रदाय अविद्या को ही बन्धन का कारण मानते हैं। अविद्या के कारण ही जीव का मूलस्वरूप छिप जाता है और उसमें 'मिथ्या दर्शन' (अपने स्वरूप का दूसरा ज्ञान) भी उत्पन्न होता है, फलतः उसमें प्रमाद और अविरति (अपने मूलस्वरूप के ज्ञान एवं शुभ-अशुभ के प्रति उदासीनता) उत्पन्न होती है। जीव में प्रमाद और अविरति से क्रोध, मोह, लोभ आदि कुप्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं। जिसे कषाय कहते हैं। कषाय जीव को कर्मपुद्गलों से

जोड़ते हैं। जीव कर्मपुद्गल की ओर आकृष्ट होता है। इस प्रकार जैनदर्शन में मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय बन्धन के कारण हैं। जैनदर्शन में बन्धन-मोक्ष को समझने के लिए आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष को भी जानना आवश्यक है—

आस्रव : जीव की ओर कर्मपुद्गलों का प्रवाह आस्रव कहलाता है। ये दो प्रकार के होते हैं— भावास्रव और द्रव्यास्रव। जीव में कर्मपुद्गलों के प्रवेश के पूर्व भावों में परिवर्तन होता है जिसे भावास्रव कहते हैं। जीव में कर्मपुद्गलों का प्रवेश हो जाना द्रव्यास्रव है।

बन्धन : कषायों के कारण कर्म के अनुसार जीव का पुद्गल से आक्रान्त हो जाना ही बन्धन है। इसके दो भेद हैं— भावबन्ध और द्रव्य-बन्ध।

संवर : कर्मपुद्गलों के प्रवाह को रोकना संवर कहा जाता है अर्थात् आस्रव और बन्ध को रोकने का नाम संवर है। कठोर तप से संवर में सफलता मिलती है।

निर्जरा : संवर में नये कर्मपुद्गलों के प्रवेश को रोकने के पश्चात् जीव में पहले से प्रविष्ट पुद्गलों को नष्ट करना निर्जरा कहलाता है। ये दो प्रकार के हैं— भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। पहले में साधक की भावना पुद्गलों के नाश की प्रवृत्ति होती है। दूसरे में कर्मपुद्गल पूर्णरूप से नष्ट हो जाते हैं।

मोक्ष : जब संवर तथा निर्जरा के द्वारा नये पुद्गलों का प्रवेश रुक जाता है तथा पुराने पुद्गल पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं तो जीव को अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। जिसे मोक्ष कहते हैं। इस अवस्था में चार घातीय कर्मों ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय का नाश हो जाता है।

मोक्ष का स्वरूप : जैन धर्म में कैवल्य (मोक्ष) के भावात्मक और अभावात्मक दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। मोक्ष की अवस्था में दुःख नहीं रहता अपितु पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है। मोक्ष की अवस्था में सारी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। इसका उल्लेख 'अनन्तचतुष्टय' के रूप में किया गया है। अर्थात् मोक्षावस्था में अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य (शक्ति) तथा अनन्तआनन्द और शान्ति मिलती है। यही जैनदर्शन का कैवल्य या मोक्ष है। कैवल्य को प्राप्त करने वाला 'केवली' कहलाता है। वह सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञाता के हो जाता है। बन्धन में रहने पर मनुष्य को सापेक्ष ज्ञान होता है, परन्तु 'केवली' होने पर उसे निरपेक्ष ज्ञान होता है। 'केवली' अपने वास्तविक रूप में अर्थात् पूर्णज्ञान की अवस्था में होता है। वह अज्ञान से मुक्त हो जाता है, जिसके कारण सभी अशुभ और दोष उत्पन्न होते हैं। मोक्ष की इस अवस्था की प्राप्ति के मार्ग बताए गये हैं, उनमें त्रिरत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र का अत्यधिक महत्त्व है। यही कैवल्य (मोक्ष) कहलाता है।

2.2.3 बौद्धदर्शन में मोक्ष

बौद्ध दर्शन के तृतीय आर्य सत्य में दुःख-निरोध या निर्वाण का वर्णन किया गया है। प्रथम आर्य सत्य में 'दुःख है' में दुःखमय जीवन की समस्या को बतलाया गया है। इसी समस्या के कारण के रूप में द्वितीय आर्य सत्य में प्रतीत्यसमुत्पाद के आधार पर दुःखों के कारण की खोज की गई।

बुद्ध ने अविद्या को प्रतीत्यसमुत्पाद (द्वादशनिदानचक्र या संसारचक्र या भवचक्र या दुःखचक्र) का मूलभूत कारण घोषित किया। उन्होंने तृतीय आर्य सत्य में इसी के आधार पर दुःख निरोध का भी वर्णन किया क्योंकि अविद्या (जो दुःखों का मुख्य कारण

हैं) के निरोध से सम्पूर्ण दुःखचक्र को नष्ट किया जा सकता है। दुःख निरोध ही निर्वाण है।

निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है बुझ जाना या टंडा पड़ जाता। कुछ दार्शनिक निर्वाण का शाब्दिक अर्थ जीवन का अन्त करते हैं। उनके अनुसार बुझने या टंडा पड़ने का अर्थ मृत्यु से है, जिसमें पंचस्कन्धों के बने रहने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि हम बुद्ध की शिक्षाएँ एवं उनके लक्ष्य को ध्यान में रखे तो निर्वाण का यह अर्थ बिल्कुल भी ठीक नहीं है। क्योंकि यह इस स्थिति में चार्वाक के 'मरणमेव अपवर्गः' जैसा होगा जो बुद्ध की शिक्षा के विपरीत है।

वस्तुतः बुझ जाने या टंडा पड़ने का अर्थ दुःखों के बुझने या टंडा पड़ने से है। बुद्ध के चार आर्य सत्यों का अर्थ भी यही है प्रथम आर्य सत्य दुःख की गहन अनुभूति करता है। द्वितीय आर्य सत्य उसका कारण स्पष्ट करता है तो तृतीय आर्य सत्य में दुःखों के अन्त की ओर ही संकेत होगा, जीवन के अन्त की ओर नहीं। इसलिए दुःखों का अन्त ही निर्वाण है। दीपक के बुझने से दुःखों के गायब हो जाने का संकेत है और टंडा हो जाने से दुःखों के शान्त हो जाने का अर्थ प्राप्त होता है।

निर्वाण एक अवर्णनीय अवस्था है। इसके विषय में यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह है भी या नहीं। इसका अर्थ केवल दुःखों से मुक्ति है। मिलिन्दपह्नो में भिक्षु नागसेन और राजा मिनाण्डर के संवाद में निर्वाण को समझाने का प्रयास किया गया है— निर्वाण समुद्र की तरह गहरा, पर्वत की तरह ऊँचाँ और शहद की तरह मीठा है। इसी ग्रन्थ में आगे कहा गया है कि निर्वाण का ज्ञान उपमाओं की सहायता से भी नहीं कराया जा सकता इसे खुद ही महसूस करना पड़ता है। जैसे जन्मान्ध व्यक्ति को रंगों की कोई जानकारी नहीं दी जा सकती।

2.3 वैदिक परम्परा में मोक्ष

2.3.1 औपनिषदिक मोक्ष चिन्तन

हम यह जान चुके हैं कि औपनिषदिक ऋषियों ने चार पुरुषार्थ स्वीकार किया है। अर्थ और काम उपनिषद के ऋषियों को संतुष्ट नहीं कर सकें। वे किसी ऐसे नित्य वस्तु को प्राप्त करना चाहते थे, जिसे प्राप्त कर लेने पर सभी कुछ प्राप्त हो जाय और संसार का आवागमन चक्र अथवा पुनर्जन्म भी रुक जाए।

कठोपनिषद् के नचिकेता और बृहदारण्यक उपनिषद् की मैत्रेयी का समस्त सांसारिक प्रलोभनों से असंतोष सभी औपनिषदिक ऋषियों के असंतोष का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार धर्म पुरुषार्थ का फल स्वर्ग भी नित्य नहीं है। फिर भी वह सांसारिक वस्तुओं से अधिक स्थायी है। पुण्यों का क्षय हो जाने पर स्वर्ग से भी लौटना पड़ता है। अतः धर्म से भी औपनिषदिक ऋषि संतुष्ट नहीं हो पाए। इसलिए वे ऐसी किसी नित्य वस्तु की खोज में थे जिसे प्राप्त कर फिर न खोना पड़े। उनकी यह नित्य वस्तु की खोज उन्हें आत्मा के ज्ञान के रूप में प्राप्त हुई।

परन्तु आत्मज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो पहले से अप्राप्त हो। यह कोई नवीन उत्पत्ति नहीं है। यदि धर्म, अर्थ और काम के फलों के समान वह (मोक्ष) कोई नवीन उत्पत्ति होती तो वह नित्य नहीं हो सकती थी क्योंकि सभी उत्पन्न सांसारिक वस्तुएँ अनित्य होती हैं। इसलिए आत्मज्ञान या मोक्ष केवल उस सत्य का ज्ञान है, जिसे हम अज्ञानतावश भूल चुके हैं।

हमें यह भली भाँति ज्ञात है कि भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों का मूल उपनिषदों में निहित है। अतः सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के मोक्ष का सिद्धान्त उपनिषदों में प्राप्त होता है। विशेषकर वेदान्त के सम्प्रदायों अद्वैत वेदान्त का जीवन्मुक्ति तथा वैष्णव वेदान्त का विदेहमुक्ति सिद्धान्त दोनों ही उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार मोक्ष यहाँ और इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार मोक्ष मृत्यु के बाद ही प्राप्त होता है। जीवन्मुक्ति का सिद्धान्त उपनिषदों की इस शिक्षा का सीधा परिणाम है कि मोक्ष ब्रह्मज्ञान में निहित है और यह इस शरीर के रहते भी प्राप्त हो सकता है। जबकि विदेहमुक्ति का सिद्धान्त वेदों के परलोक विद्या सम्बन्धी चिन्तन का तार्किक परिणाम है।

उपनिषद् यह स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि मोक्ष यहाँ और इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है और शरीर की उपस्थिति के साथ उसकी कोई असंगति नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद् (4/4/14) में कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान यहीं सम्भव है। “हम इस शरीर में रहते हुए ही यदि हम उसे जान लेते हैं तो कृतार्थ हो गये और यदि उसे यहाँ नहीं जाना तो बड़ी हानि है। जो उसे जान लेते हैं वे अमृत रूप हो जाते हैं। किन्तु दूसरे लोग तो दुःख को ही प्राप्त होते हैं।” इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् (2/2/8) में भी कहा गया है कि जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, उसकी हृदय ग्रन्थि टूट जाती है और सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके कर्मों का क्षय हो जाता है। इसी उपनिषद् (3/2/9) में आगे कहा गया है कि जो ब्रह्म को जान लेता है वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। वह शोक को तर जाता है, पाप को पार कर लेता है और हृदय ग्रन्थियों से विमुक्त होकर अमस्त्व को प्राप्त कर लेता है।

जिसने आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान या मोक्ष प्राप्त कर लिया है उसका फिर जन्म नहीं होता। पुनर्जन्म अथवा जन्म ग्रहण करने का मूल कारण भव-तृष्णा या सांसारिक भोगों को भोगने की अतृप्त इच्छा है। परन्तु आत्मज्ञानी की सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अब उसमें कोई तृष्णा शेष नहीं रहती। जिस प्रकार समुद्र से मिलने पर नदियाँ अपना नाम-रूप मिट जाता है, उसी प्रकार आत्मज्ञानी ब्रह्म में अपने नाम-रूप का खो कर ब्रह्म के साथ एकाकार हो कर स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। मोक्ष की अवस्था में व्यावहारिक जीवन के सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। आत्मज्ञानी सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो कर अभय हो जाता है।

वस्तुतः व्यावहारिक भेदों (अपना-पराया, मैं-तुम, भय, संदेह, घृणा आदि) का मूल कारण हमारे अन्दर स्थित ‘अन्य’ या ‘पराया’ की भावना है। हम मनुष्य संसार के शेष प्राणियों को खुद से अलग या ‘अन्य’ समझते हैं। हमें खुद से कोई भय, घृणा या संदेह नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि ये सब ‘अन्य’ से ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु जब ‘अन्य’ की भावना ही समाप्त हो जाए तो भय किसका? घृणा किससे? सन्देह किस पर? मोक्ष की अवस्था में यह सब समाप्त हो जाते हैं। यही अद्वैत का भाव है जो हमारे जीवन का परम लक्ष्य परम शुभ है।

इस अद्वैत की स्थिति में मोक्ष प्राप्त किया व्यक्ति अथवा जीवन मुक्त व्यक्ति को अपने शरीर से कोई आकर्षण या मोह नहीं रहता। जिस प्रकार सर्प के लिए पुरानी केंचुली का कोई महत्त्व नहीं रहता उसी प्रकार मुक्त पुरुष के लिए शरीर का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। वह शरीर को अनासक्त भाव से धारण किये लोक कल्याण में रमा रहता है।

उपनिषदों में ऐसे भी मन्त्र प्राप्त होते हैं जो शरीर—त्याग के पश्चात् क्रम—मुक्ति का वर्णन करते हैं। ध्यान रहे कि क्रम—मुक्ति का सिद्धान्त वैष्णव वेदान्तियों से सम्बन्धित है। कठ उपनिषद् (2/3/5) का एक मन्त्र कहता है कि जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार दर्पण के समान निर्मल हुई अपनी बुद्धि में आत्मा का स्पष्ट दर्शन होता है। जिस प्रकार स्वरूप में आत्मा का दर्शन अस्पष्ट होता है उसी प्रकार पितृलोक में भी अस्पष्ट आत्म—दर्शन होता है। जिस प्रकार जल में अपना स्वरूप ऐसा दिखाई देता है मानों उसके अवयव विभक्त न हों, उसी प्रकार गन्धर्वलोक में भी अस्पष्ट रूप से आत्मा का दर्शन होता है। ब्रह्म लोक में तो छाया और प्रकाश के समान आत्म—ज्ञान सर्वथा स्पष्ट अनुभूत होता है। यह मन्त्र स्पष्ट रूप से क्रम—मुक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव—वेदान्तियों के क्रम—मुक्ति के सिद्धान्त को भी उपनिषदों में स्थान प्राप्त है। उपनिषदों में मोक्ष की अवधारणा का अध्ययन करने के उपरान्त अब हम उपनिषदों का सार कहे जाने वाले ग्रन्थ भगवद्गीता में मोक्ष के आदर्श का अध्ययन करेंगे।

2.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ का आदर्श

उपनिषदों में मोक्ष की अवधारणा तथा उनकी शिक्षा के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि यह अद्वैतवेदान्त के जीवन्मुक्त सिद्धान्त (मोक्ष यहाँ और इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है) के अधिक निकट है। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या मुक्त पुरुष का सामाजिक जीवन और समान के प्रति कोई दायित्व है अथवा नहीं? इस प्रश्न का उत्तर उपनिषदों के सारांश के रूप में प्रसिद्ध श्रीमद्भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ की अवधारणा में प्राप्त होता है।

वास्तव में उपनिषदों की शिक्षा कुछ ऐसे चुने हुए अधिकारियों के लिए थी जिन्होंने अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण कर लिया था तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति सजग थे। इसलिए उनके द्वारा सामाजिक दायित्वों की अवहेलना संभव नहीं थी। परन्तु बाद के समय में लोग उपनिषदों की इस शिक्षा का गलत अर्थ लेने लगे। समाज के इसी विखण्डन को रोकने के लिए भगवद्गीता में निष्काम भाव से स्वधर्म पालन एवं स्थितप्रज्ञ के आदर्श पर जोर दिया गया।

उपनिषदों के समान भगवद्गीता भी परम तत्त्व के रूप में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करती है। उपनिषदों की शिक्षा कुछ ऐसे चुने हुए अधिकारियों के लिए सुरक्षित थी। जबकि भगवद्गीता का उद्देश्य उसी वैदिक और औपनिषदिक ज्ञान को विभिन्न स्वभाव वाले सामान्य मनुष्यों को सुलभ कराना था। अतः उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर भगवद्गीता उसके विभिन्न रूपों जैसे सगुण ब्रह्म, ईश्वर, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण इत्यादि का अधिक वर्णन करती है।

उपनिषदों के समान गीता में भी ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ कभी उस (ब्रह्म) सभी दिव्य गुणों का आश्रय कहा गया है और कभी उसे सभी गुणों से परे कहा गया है। ब्रह्म के सगुण रूप का प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'प्रत्येक कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और कल्प के प्रारम्भ में उनको मैं फिर रचता हूँ। पुनः वे कहते हैं कि 'मेरी अध्यक्षता में प्रकृति सब भूतों को उत्पन्न करती है'। निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए गीता (7/25) कहती है कि 'मेरा (श्रीकृष्ण) वास्तविक स्वरूप अव्यक्त है परन्तु मैं अपनी योगमाया से व्यक्त रूप स्वरूप धारण करता हूँ। अव्यक्त से व्यक्त होना ही मेरी माया है'। अतः यह स्पष्ट है कि

व्यक्त स्वरूप का वर्णन केवल भक्तों के लिए किया गया है। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप निर्गुण ही है।

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जब गीता के अनुसार भी परम तत्त्व का स्वरूप निर्गुण ही है तो फिर उसके सगुण स्वरूप, ईश्वर, पुरुषोत्तम आदि का अधिक वर्णन क्यों प्राप्त होता है? इसका कारण गीता के निष्काम कर्म से स्पष्ट हो जाता है। गीता में अर्जुन को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराने के लिए ही कृष्ण ने उपदेश दिया था। वास्तव में कृष्ण का मूल मन्तव्य अर्जुन को यह अनुभव कराना था कि जिन कार्यों को वह अपने द्वारा किया गया समझ रहा है वे तो वास्तव में ईश्वर के ही कार्य हैं और उसके बगैर (अर्जुन) भी ईश्वर उन कार्यों को स्वतः या किसी अन्य माध्यम से करवा सकता है। वस्तुतः अर्जुन ईश्वरीय कार्य के लिए केवल निमित्त मात्र ही है।

यही कारण है कि गीता निष्काम कर्म पर अधिक बल देती है। अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पित करने वाला तथा कर्मों को निष्काम भाव से करने वाला व्यक्ति ही स्थितप्रज्ञ अथवा मोक्ष का अधिकारी हो सकता है।

गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ आत्म-साक्षात्कार या मोक्ष की स्थिति को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ कहा गया है। गीता में स्थितप्रज्ञ एवं समाधिस्थ का एक ही अर्थ है। स्थितिप्रज्ञ वह है जिसकी प्रज्ञा या बुद्धि स्थिर हो जाती है। यह जाग्रत अवस्था की समाधि है। इस अवस्था में परमात्मा के साथ अखण्ड सम्बन्ध स्थापित होता है और सभी कार्यों को करते हुए भी अकर्त्तापन का अनुभव होता है। यह ब्रह्म में निवास करने की अवस्था है जो ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। स्थितप्रज्ञ इसी जीवन में पूर्णता अथवा मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को प्राप्त करने वाले व्यक्ति ईश्वर के पद को प्राप्त करते हैं और पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण : स्थितप्रज्ञ की सभी कामनाओं और वासनाओं का नाश हो जाता है। वह दुःख में बहुत दुःखी नहीं होता और सुखों में बहुत हर्षित नहीं होता। वह केवल ईश्वर में लीन रहता है और जगत् के प्रति अनासक्त रहता है क्योंकि वह जानता है कि जगत् के सभी पदार्थ अनित्य हैं।

स्थितप्रज्ञ शुभ-अशुभ, प्रिय-अप्रिय, लाभ-हानि, जय-पराजय, सभी स्थितियों में तटस्थ रहता है, क्योंकि वह जानता है कि सभी स्थितियाँ ईश्वर के अधीन रहती हैं। स्थितप्रज्ञ आदर्श पुरुष है, उसमें ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों का समन्वय होता है। वह बिना आसक्ति के कार्य करता है अतः वह कर्मयोगी है। स्थितप्रज्ञ मुक्त पुरुष है। उसकी बुद्धि सदैव नित्य ब्रह्म में लगी रहती है।

इस प्रकार हमें निष्कर्षतः यह ज्ञात होता है कि मोक्ष के स्वरूप, मुक्त पुरुष के सामाजिक जीवन तथा उसके लोक कल्याण के कार्यों का वर्णन गीता में विभिन्न स्थानों पर हुआ है। यहाँ मुक्त पुरुष को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। गीता में उसे जीवन्मुक्त (जो शरीर रहते मुक्त हो गया हो), गुणातीत (जो सभी गुणों से ऊपर उठ चुका हो), स्थितप्रज्ञ (जिसका मन स्थिर हो गया हो तथा समता की दृष्टि वाला हो), भक्त (जिसने स्वयं को ईश्वर को अर्पित कर दिया हो अथवा ईश्वर की शरणागति प्राप्त कर ली हो), ज्ञानी (जिसने ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर ली हो) तथा कर्मयोगी (जो निष्काम भाव से कर्म करता हो) आदि नामों से जाना जाता है।

उपनिषद् और गीता में मोक्ष के स्वरूप, अर्थ और सिद्धान्त का अध्ययन करने के बाद हम भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों (आस्तिक एवं नास्तिक) में मोक्ष की अवधारण का अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम नास्तिक सम्प्रदायों— चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन में वर्णित मोक्ष के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है।

2.3.3 सांख्ययोग दर्शन में कैवल्य अथवा मोक्ष चिन्तन

सांख्यदर्शन में मोक्ष को कैवल्य के नाम से जाना जाता है। सांख्य तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन करता है— आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। सांख्य के अनुसार मनुष्य इन तीन प्रकार के दुःखों से पीड़ित है। 'पुरुष' तत्त्व स्वभावतः नित्य तथा शुद्ध है, ज्ञान स्वरूप तथा बन्धन रहित है। इसका न तो बन्धन होता है और न मोक्ष। वास्तव में प्रकृति ही सूक्ष्म शरीर के रूप में पुरुष के आश्रय से बन्धनग्रस्त होती है, संसरण करती है और मुक्त होती है। सूक्ष्म शरीर के साथ पुरुष का संयोग ही बन्धन है और बन्धन का कारण अविवेक है। पुरुष स्वभावतः ज्ञाता मात्र है जो बुद्धि, अहंकार, मन, शरीर और इंद्रिय से भिन्न है। किन्तु वह अविवेक (भेद या ज्ञान का अभाव) के कारण अनात्म (जड़) वस्तुओं से सम्पर्क स्थापित करके अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। पुरुष प्रकृति के विकारों और उसके तीन गुणों से तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है।

कैवल्य का स्वरूप : सांख्य दर्शन के अनुसार कैवल्य तीनों प्रकार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्तिमात्र है। यह वह अवस्था है जिसमें सभी प्रकार के दुःखों का सर्वदा के लिए निवारण हो जाता है। इस अवस्था में पुरुष अपने नित्य, शुद्ध, चैतन्य रूप में प्रकाशित होता है। यह पुरुष के अपने नित्य स्वरूप में अवस्थित हो जाने की अवस्था है।

पुरुष अपने नित्य स्वरूप में तब अवस्थित होता है जब वह अचेतन प्रकृति एवं अन्तःकरण आदि से अपना विभेद (अलग) जान लेता है। विवेकज्ञान होने से पुरुष जान लेता है कि मैं अचेतन, विषय, जड़, प्रकृति, अन्तःकरण आदि नहीं हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है और मैं अहंकार नहीं हूँ।

जब यह ज्ञान तत्त्वों के अभ्यास से सुदृढ़ हो जाता है तब यह केवल विशुद्ध ज्ञान है और यही कैवल्य की अवस्था है। इसे अपवर्ग भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें पुरुष दुःखमय जगत् से अलग हो जाता है। पुनः चूँकि सूक्ष्म शरीर से पुरुष का संयोग ही बन्धन या दुःखानुभूति का कारण है। अतः विवेकज्ञान द्वारा इस संयोग की समाप्ति ही कैवल्य है। कैवल्य की स्थिति में बाधाएँ दूर हो जाती हैं, जो पुरुष के वास्तविक स्वरूप की अभिव्यक्ति में बाधा डालती हैं। इस प्रकार पुरुष कैवल्य की स्थिति में प्रकृति एवं उसके विकारों से अलग होकर आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति की अवस्था में आ जाता है।

2.3.4 न्यायवैशेषिक में मोक्ष विचार

न्यायदर्शन मोक्ष को परम् पुरुषार्थ मानता है इसकी मान्यता है कि प्रमाण और प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के ज्ञान से जीव को मोक्ष की प्राप्ति अथवा उसके दुःखों का शमन होता है। अविद्या या मिथ्या ज्ञान से जीव को दुःखों की प्राप्ति होती है और वह बन्धनग्रस्त होता है।

आत्मा का शरीर एवं इंद्रियों से युक्त होकर बार-बार जन्म लेना बन्धन है। मिथ्या ज्ञान, ज्ञान का अभाव मात्र नहीं अपितु विपरीत ज्ञान भी है। इसके कारण आत्मा अपने से भिन्न पदार्थों के साथ अपना सम्पर्क करती है। और सुख-दुःख आदि आगन्तुक गुणों को अपना तात्त्विक गुण समझ लेती है। जिनकी उत्पत्ति शरीर एवं इंद्रियों के साथ उसका साहचर्य होने से होती है।

इस प्रकार मिथ्या ज्ञान के कारण आत्मा में राग-द्वेष एवं मोह उत्पन्न होते हैं। इनके कारण आत्मा कर्मों में प्रवृत्त होकर तरह-तरह के दुःखों को भोगती है। इस प्रकार आत्मा अविद्या या मिथ्या ज्ञान के कारण बन्धनग्रस्त एवं दुःखग्रस्त होती है।

न्याय दर्शन मोक्ष का अपवर्ग कहता है। यह दुःखों के पूर्ण विरोध की अवस्था है। अपवर्ग का अर्थ है, "आत्मा का शरीर एवं इंद्रियों के बन्धन से छुटकारा पाना या संसार से छुटकारा पाना है।"

उल्लेखनीय है कि न्याय दर्शन में आत्मा को अचेतन द्रव्य माना जाता है तथा ज्ञान, सुख, दुःख आदि का उसका आगन्तुक धर्म माना जाता है। ये आत्मा में तभी उत्पन्न होते हैं जब आत्मा का विषयों के साथ सम्पर्क होता है।

आत्मा मन सहित पंचज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विषयों के सम्पर्क में आती है। इंद्रियाँ स्थूल शरीर में उत्पन्न होती है। जब तक आत्मा शरीर और इंद्रियों से संयुक्त रहती है तब तक विषयों के साथ उसके सम्पर्क को रोका नहीं जा सकता। परिणामस्वरूप दुःखनिवृत्ति सम्भव नहीं है। अतः मोक्ष हेतु आत्मा का शरीर एवं इंद्रियों के संयोग से मुक्त होना आवश्यक है। इस प्रकार मोक्ष आत्मा का शरीर और इंद्रियों से छुटकारा पाना है।

मोक्ष एक अभावात्मक अवस्था है। यह एक निषेधात्मक आदर्श है। इसका अर्थ है, दुःख निवृत्ति मात्र, सुख प्राप्ति नहीं। वास्तव में इस लक्ष्य को स्वीकार करके वह आत्मा और जड़द्रव्य के अन्तर को अस्वीकार कर देता है। ऐसा आदर्श साधारण बुद्धि के लिए अरुचिकर एवं असन्तोषजनक प्रतीत होता है। मोक्ष की अवस्था में केवल दुःखों का अभाव होता है, इसमें किसी प्रकार का सुख प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह सभी प्रकार के अनुभवों से परे एक अचेतन अवस्था है। आत्मा की इसी अवस्था को धर्मग्रन्थों में अभयम्, अपरम्, अमृत्युपदम् आदि कहा जाता है। इस अवस्था में आत्मा अपनी स्वाभाविक अवस्था में अवस्थित हो जाती है। वह द्रव्यमात्र रहता है और उसमें बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, द्वेष, संस्कार, सुख, दुःख आदि नौ गुणों का अभाव हो जाता है।

न्याय दर्शन ज्ञानमार्ग द्वारा मोक्ष का विधान करता है। चूँकि इसकी दृष्टि में मिथ्या ज्ञान बन्धन का कारण है, अतः यह तत्त्वज्ञान को मोक्ष का साधन मानता है। उसका तत्त्वज्ञान श्रवण, मनन और निदिध्यासन का मार्ग है। श्रुतियों एवं धर्मशास्त्रों के आत्मा विषयक वचनों को सुनना श्रवण है। युक्तिपूर्वक उसका अनुशीलन करना मनन है। श्रवण एवं मनन किये गये आत्मविषयक वचनों का ध्यान करना निदिध्यासन है।

तत्त्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान नष्ट होता है। तदनन्तर राग-द्वेष और मोह आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दोष के अभाव में प्रवृत्ति, का परिणामस्वरूप जन्म नहीं होता और जन्म के निरुद्ध होने से दुःख भी निरुद्ध हो जाता है। किन्तु न्याय दर्शन का मोक्ष का निषेधात्मक आदर्श तथा उसकी प्राप्ति का शुष्क एवं कठोर साधन मानव को प्रेरणा देने से असफल है।

वैशेषिक सूत्र में महर्षि कणाद मोक्ष के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं कि सभी प्रकार के कर्मों (अदृष्ट) के अन्त हो जाने पर आत्मा का शरीर से सम्बन्ध टूट जाता है जिसके फलस्वरूप जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है और सभी सुख अनन्त काल के लिए समाप्त हो जाते हैं।

2.3.5 मीमांसादर्शन में मोक्ष चिन्तन

मीमांसा दर्शन भी मोक्ष को परम पुरुषार्थ स्वीकार करता है। जैसा कि हमें पूर्व से ही ज्ञात है कि मीमांसा दर्शन में वेद विहित कर्मों को प्रमुखता दी गई है। दूसरे शब्दों में कहें तो वैदिक कर्म-काण्ड का प्रतिपादन मीमांसा दर्शन में हुआ है। मीमांसा दर्शन में स्वर्ग को परम पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है— “स्वर्गकामो यजेत्” अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाले व्यक्ति को यज्ञ करना चाहिए। परन्तु बाद में अन्य भारतीय दर्शनों के प्रभाव में मीमांसा दर्शन के स्वर्ग के स्थान पर मोक्ष को परम पुरुषार्थ के रूप में अपना लिया।

मीमांसा दर्शन में आत्मा को नित्य एवं विभु कहा गया है। आत्मा सम्बन्धी यह विचार न्याय वैशेषिक दर्शन के समान है। मीमांसा की मान्यता अनुसार आत्म तत्त्व नित्य एवं विभु होते हुए भी अपने को अनेक उपाधियों से युक्त कर के बन्धन में पड़ जाता है। यहाँ आत्मा के बन्धन तीन प्रकार के माने गये हैं— भौतिक शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं जगत्। ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मा को बाह्य विषयों से जोड़ती हैं। ज्ञानेन्द्रिय का आश्रय शरीर है जो आत्मा को सुख-दुःख आदि की अनुभूति कराता है। जगत् के माध्यम से आत्मा को विभिन्न विषयों का अनुभव होता है। इस प्रकार आत्मा का शरीर ज्ञानेन्द्रियों एवं जगत् से सम्बन्धित होना ही बन्धन है।

यहाँ प्रश्न है कि आत्मा का बन्धन क्यों होता है? मीमांसकों के अनुसार आत्मा कर्मों के कारण शरीर आदि उपाधियों से युक्त होकर बन्धन में पड़ता है। वह सकाम एवं प्रतिषिद्ध कर्मों के सम्पादन के फलस्वरूप धर्म एवं अधर्म (पुण्य एवं पाप) के कारण बन्धन ग्रस्त होता है। इन कर्मों के होने का कारण अज्ञान है इसलिए अज्ञान ही बन्धन का कारण है।

मीमांसा दर्शन में मोक्ष की अवधारणा आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति के रूप में प्राप्त होती है। न्याय एवं वैशेषिक दर्शन में भी मोक्ष की यही अवधारणा है। इसमें दुःखों के साथ सुखों का भी अभाव होता है। इस प्रकार मोक्ष वह अवस्था है जिसमें आत्मा दुःख-सुख से परे अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। तीन प्रकार के सांसारिक बन्धनों से आत्मा का हमेशा के लिए सम्बन्ध टूट जाना ही मोक्ष है।

कुमारिल के अनुसार समस्त दुःखों से रहित तथा त्रिविध बन्धनों से मुक्त होकर आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाना मोक्ष है। प्रभाकर के अनुसार धर्म और अधर्म अथवा पुण्य और पाप का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन में मोक्ष एक “अभावात्मक” अवस्था है। परन्तु बाद के मीमांसकों ने मोक्ष को भावात्मक अवस्था में रूप में परिवर्तित कर दिया। उनके अनुसार मोक्ष दुःखों का हटना तो है ही साथ ही यह आनन्दानुभूति की भी अवस्था है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार यह जगत् यथार्थ है और मोक्ष प्राप्त करने के बाद भी यह पहले जैसा बना रहता है। मोक्ष का अर्थ केवल यह जानना है कि आत्मा का संसार से सम्बन्ध वास्तविक होते हुए भी आवश्यक नहीं है।

मीमांसा में कर्म बन्धन का कारण है। अतः कर्म के प्रति उदासीनता मोक्ष का साधन है। लेकिन मीमांसा सभी कर्मों के प्रति उदासीन रहने को नहीं कहती, वह केवल काम्य एवं प्रतिषिद्ध कर्मों से दूर रहने का आदेश देती है। वेद में कहे गये नित्य कर्मों का सम्पादन यहाँ अनिवार्य है इसलिए काम्य एवं प्रतिषिद्ध कर्मों के प्रति उदासीनता तथा नित्य कर्मों का सम्पादन मोक्ष का साधन है। इसका अर्थ यह हुआ कि काम्य एवं प्रतिषिद्ध कर्मों को करने से पाप होता है। इसलिए मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को इनका त्याग कर देना चाहिए।

2.3.6 अद्वैत वेदान्त में मोक्ष का स्वरूप

यहाँ मोक्ष आत्मा या ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति है, आत्मा या ब्रह्म नित्य, शुद्ध, चेतन एवं अखण्ड आनन्द है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और मोक्ष आत्मा का स्वरूप ज्ञान है। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म और मोक्ष एक ही है— 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' अर्थात् जो ब्रह्म को जानता है वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

अद्वैत वेदांत में ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मभाव एक ही है। यहाँ जीव ब्रह्म के रूप में परिवर्तित नहीं होता क्योंकि जीव तो सदैव ब्रह्म ही है। ब्रह्मज्ञान में कोई क्रिया नहीं होती है। बन्धन और मोक्ष दोनों अविद्या के कारण होते हैं। जब बन्धन वास्तविक नहीं है, तो मोक्ष भी वास्तविक अर्थ नहीं हो सकता।

जीव का अस्तित्व अविद्या के कारण है। अविद्या के कारण जीव 'मैं' और 'तुम' से युक्त होकर सुख-दुःखरूपी कर्मों को भोगता हुआ जन्म-मरण चक्र में घूमना ही उसका बन्धन है। आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान द्वारा अविद्या नष्ट हो जाती है, तो जीव नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। यह उसकी बन्धन से मुक्ति है किन्तु जीव और ब्रह्म की एकता तीनों कालों में सिद्ध और नित्य होने के कारण जीव का न तो बन्धन होता है और न ही मोक्ष। केवल अविद्या ही आती है और अविद्या ही जाती है और अविद्या भ्रान्ति है इसलिए उसका आवागमन दोनों ब्रह्मरूप है।

बन्धन और मोक्ष दोनों व्यावहारिक है, पारमार्थिक स्तर पर दोनों मिथ्या है। अद्वैत वेदांत में ब्रह्मसाक्षात्कार, अविद्या निवृत्ति और मोक्ष प्राप्ति ये सब एक है, अविद्या निवृत्ति और ब्रह्मभाव या मोक्ष में क्रिया नहीं होती। आत्मज्ञान मोक्ष को फल या कार्य के रूप में उत्पन्न नहीं करता है।

मोक्ष नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा या ब्रह्म की अपरोक्ष अनुभूति है, मोक्ष में न कुछ खोना है, न कुछ पाना है, मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान भी अविद्याजन्य है। मोक्ष किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति नहीं है। मोक्ष आत्मभाव है जो सदा से प्राप्त है।

शंकराचार्य ने मोक्ष के तीन लक्षण बताये हैं— 1. मोक्ष अविद्या निवृत्ति है। 2. मोक्ष ब्रह्मभाव या ब्रह्मसाक्षात्कार है। 3. मोक्ष नित्य अशरीरत्व है। मोक्ष का निरूपण करते हुए शंकर कहते हैं कि "यह पारमार्थिक सत् है, कूटस्थ नित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, सभी विकारों से रहित है, नित्य-तृप्त है, निरवयव है, यह स्वयं प्रकाश है, यह तीनों कालों से परे है, यह अशरीरत्व मोक्ष कहलाता है।"

अद्वैतवेदांत में मोक्ष परमार्थिक सत् है यह नित्य मुक्त परमार्थ है, यह स्वतन्त्र स्वाराज्य है, अभय पद है और परमपुरुषार्थ है। मोक्ष कोई कार्य या उत्पाद्य नहीं है। मोक्ष को किसी कारण द्वारा उत्पन्न नहीं माना जा सकता यह न तो कर्म और न उपासना का फल है। यह नित्य आनन्द है और सांसारिक तथा स्वर्गिक सुखों से भिन्न और अव्यक्त

श्रेष्ठ है।

शंकर जीवन्मुक्ति को स्वीकार करते हैं। मोक्ष मृतकों के लिए आरक्षित नहीं है। यह इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। अद्वैतवेदांत में जब श्रुति 'तत्त्वमसि' उपदेशवाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अनुभववाक्य में परिणत हो जाय तब ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

शब्द का बोध किस प्रकार अपरोक्षानुभव में बदल जाता है। इसे दस मूर्खों की कथा से समझा जा सकता है। इस कथा में दस मूर्खों ने नदी में बह जाने के भय से एक-दूसरे का हाथ पकड़कर एक छोटी नदी पार की। नदी के पार आकर जब वे अपनी गणना करने लगे तो प्रत्येक व्यक्ति ने अपने को छोड़कर अन्य नौ व्यक्तियों को ही गिना। तब वे रोने लगे कि उनमें से कोई व्यक्ति बह गया है। एक बुद्धिमान पुरुष ने जब उनकी कथा सुनी तो उन्हें बताया की वे तो दस ही हैं किन्तु उन मूर्खों को इस शब्दबोध से विश्वास नहीं हुआ। तब उस व्यक्ति ने स्वयं उनको गिनना प्रारम्भ किया और दसवें व्यक्ति को गिनते हुए उसे थपथपाकर कहा "तुम ही दसवाँ व्यक्ति हो" (त्वमेवं दशमोऽसि) तब उसके दसवें व्यक्ति को साक्षात् अनुभव हुआ कि वहीं दसवाँ व्यक्ति है।

तत्त्वमसि में तत् 'पद' परब्रह्म को सूचित करता है जो मूल तत्व है। 'त्वम्' पद जीव को सूचित करता है। जो अविद्या और साक्षी का मिश्रण है, 'असि' पद से दोनों के पूर्व तादात्म्य का प्रतिपादन होता है। यह महावाक्य जीव के आरोपित जीवन का निषेध कर के उसके ब्रह्मस्वरूप को निर्देशित करता है— "तुम ब्रह्म हो जीव ब्रह्म ही है।"

2.3.7 राजानुज के दर्शन में मोक्ष

वैष्णव दर्शन में ईश्वर साक्षात्कार या ईश्वर की प्राप्ति ही मानव जीवन के का परम लक्ष्य है। वैष्णव दर्शन तथा धर्म की नींव रामानुजाचार्य ने डाली थी। उनके अनुसार सांसारिक बन्धन और पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि केवल आत्म-ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती अपितु ईश्वर को अन्तरात्मा समझते हुए अपने प्रतिबिम्ब को देखना है और ईश्वर के अधीन होकर विशेष आनन्द की प्राप्ति है। रामानुज के द्वारा स्वीकृत मोक्ष को दो प्रकार से समझा जा सकता है— अभावरूप मोक्ष और भावरूप मोक्ष।

अभावरूप मोक्ष का अर्थ है जीव का जन्म और मृत्यु से परे हो जाना। वास्तव में जन्म और मृत्यु शरीर के कारण ही होते हैं। शरीर के कारण ही मनुष्य कर्म करता है और उस कर्म का फल प्राप्त करता है। यदि कर्म-फल नष्ट हो जाए तो शरीर सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं रहेगी। इसलिए कर्म और उसके फलों का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है।

भावरूप मोक्ष का अर्थ है मुक्त जीव का दिव्य लोक में स्थित होना। इस लोक को ही बैकुण्ठ या गोलोक या परमपद कहते हैं। मोक्ष की अवस्था में जीव परमपद को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में जीव के समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं और उसे ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान का विषय ईश्वर का दिव्य विग्रह (शरीर) होता है। मुक्त जीव सदैव ईश्वर का प्रत्यक्ष करते हैं। इसीलिए रामानुज के अनुसार मोक्ष का अर्थ ईश्वर का साक्षात्कार करना है न कि आत्म-साक्षात्कार। (ध्यान रहें शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष का अर्थ आत्म-साक्षात्कार अथवा आत्म-ज्ञान है) वैष्णव दर्शन तथा धर्म में ईश्वर का साक्षात्कार ही मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य है। आत्म-साक्षात्कार ईश्वर-साक्षात्कार के सम्मुख कुछ भी नहीं है।

रामानुज के अनुसार मोक्ष अप्राप्त की प्राप्ति है। उनकी दृष्टि में मोक्ष जीव द्वारा अपने पारमार्थिक स्वरूप का ज्ञानमात्र नहीं है अपितु ब्रह्म प्राप्ति भी है जो ब्रह्मज्ञान से होती है। इस प्रकार रामानुज की दृष्टि में ब्रह्मज्ञान मोक्ष ही नहीं है अपितु यह मोक्ष का साधन भी है।

रामानुज की मान्यता है कि मोक्ष प्राप्त होने पर जीव ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त करता है। यद्यपि वह उसकी तद्रूपता (वैसा ही) को नहीं प्राप्त करता। वह सर्वज्ञ हो जाता है और उसे सदैव अन्तर्दृष्टि द्वारा ईश्वर का ज्ञान होता रहता है। कहने का तात्पर्य है कि जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है किन्तु उसका अलग से अस्तित्व भी बना रहता है। उसका व्यक्तित्व ब्रह्म में विलीन नहीं होता।

रामानुज मुक्ति के एक ही रूप विदेहमुक्ति या क्रममुक्ति को मानते हैं। उनके अनुसार जीव ईश्वरोपासना द्वारा क्रमशः मुक्त होता है। जीव देह के नष्ट होने के बाद देवयानमार्ग से बैकुण्ठ या गोलोक जाता है अर्थात् मोक्ष की अवस्था में जीव सांसारिक बन्धनों से मुक्त तो होता ही है, साथ ही वह पृथ्वी से ऊपर एक दिव्यलोक (बैकुण्ठ) में पहुँचता है और वहाँ ईश्वर के साथ परम आनन्द में रहता है। इस प्रकार विशिष्टाद्वैत दर्शन में मोक्ष एक भावात्मक अवस्था है। इसमें मुक्त जीव को अनन्त ज्ञान तथा अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है।

2.4 सारांश

वस्तुतः भारतीय दर्शन का लक्ष्य उस स्थिति को प्राप्त करना है जहाँ जीव परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि में सभी प्राणी समान होते हैं। उसमें समता एवं एकता का भाव उत्पन्न होता है। जहाँ 'मैं और 'तुम', 'है' और 'चाहिए' का द्वैत नष्ट हो जाता है यही मोक्ष की स्थिति है। अतः यह कहा जा सकता है कि मोक्ष भारतीय दर्शन की सर्वाधिक मौलिक देन है।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण सामान्य रूप से आस्तिक और नास्तिक के रूप में किया जाता है। सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा-वेदान्त वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार करने के कारण आस्तिक कहलाते हैं। चार्वाक, जैन और बौद्ध वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार न करने के कारण नास्तिक कहलाते हैं। भौतिकवादी और जड़वादी चार्वाक दर्शन केवल दो पुरुषार्थों अर्थ और काम को वरीयता देता है जबकि अन्य भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय (जिनमें जैन और बौद्ध भी शामिल हैं) चारों प्रकार के पुरुषार्थों को स्वीकार करते हुए मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानते हैं।

भौतिकवादी और जड़वादी चार्वाक स्पष्ट रूप से मोक्ष को परम पुरुषार्थ नहीं मानता। उसके अनुसार शरीर का अन्त होना या मृत्यु ही मोक्ष है। जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र का अनुसरण ही मोक्ष है। बौद्ध दर्शन में मानव का परम लक्ष्य निर्वाण है। यह ईश्वरीय कृपा नहीं अपितु मानवीय पौरुष है। मनुष्य स्वयं अपने दुःखों या बन्धन का कारण है अतः उससे मुक्त होने का उपाय भी उसके ही हाथों में है।

भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों-बहुतत्त्ववाद (जैन, न्याय-वैशेषिक), द्वैतवाद (सांख्य-योग), एकतत्त्ववाद (बौद्ध, वेदान्त) और परमवाद का लक्ष्य एक ही है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रंग की गायों के दूध का रंग एक ही है, उसी प्रकार दार्शनिक सम्प्रदाय और उनके आचार्य अलग-अलग होते हुए भी उनकी शिक्षाओं का उद्देश्य एक ही है। वह है जीव को मोक्षदायक ज्ञान प्रदान करना।

मोक्षदायक ज्ञान का स्वरूप विभिन्न दर्शनों में अलग-अलग हो सकता है। यह उनकी तत्त्व मीमांसा द्वारा निश्चित होता है। वस्तुगत रूप से मोक्षदायक ज्ञान परमतत्त्व का ज्ञान है परन्तु व्यक्तिगत रूप से वह जीव के स्वयं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। इस प्रकार भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों के अनुसार जीव का मोक्ष उसके स्वयं के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान (आत्मज्ञान) में निहित है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

मोक्ष : मोक्ष का अर्थ जीवन-मरण और पुनर्जन्म के चक्र से और सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है। उपनिषद् के ऋषियों ने कठोर इस सत्य का ज्ञान प्राप्त किया कि पुनः पुनः जन्म ग्रहण करना ही सभी प्रकार के दुःखों का कारण है। जन्म-ग्रहण करने की आवश्यकता का आन्त्यान्तिक अभाव हो जाना ही सभी साधनाओं का लक्ष्य है, यही मोक्ष है।

अनन्तचतुष्टय : जैन सिद्धान्त के अनुसार जीव एक द्रव्य है और चेतना उसका लक्षण है। जीव का मूल स्वरूप 'अनन्तचतुष्टय' से परिपूर्ण है। है। उसमें 'अनन्त चतुष्टय' अर्थात् चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती है। ये हैं— अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तआनन्द। जीव के ये स्वाभाविक गुण केवल मुक्त जीवों में अभिव्यक्त होते हैं बद्ध जीवों में इनकी अभिव्यक्ति नहीं होती।

प्रतीत्यसमुत्पाद : बुद्ध ने अविद्या को प्रतीत्यसमुत्पाद (द्वादशनिदानचक्र या संसारचक्र या भवचक्र या दुःखचक्र) का मूलभूत कारण घोषित किया। उन्होंने तृतीय आर्य सत्य में इसी के आधार पर दुःख निरोध का भी वर्णन किया क्योंकि अविद्या (जो दुःखों का मुख्य कारण है) के निरोध से सम्पूर्ण दुःखचक्र को नष्ट किया जा सकता है। दुःख निरोध ही निर्वाण है।

अपवर्ग : न्याय दर्शन मोक्ष का अपवर्ग कहता है। यह दुःखों के पूर्ण विरोध की अवस्था है। अपवर्ग का अर्थ है, आत्मा का शरीर एवं इन्द्रियों के बन्धन से छुटकारा पाना या संसार से छुटकारा पाना है।

जीवन्मुक्ति : शंकर जीवन्मुक्ति को स्वीकार करते हैं। मोक्ष मृतकों के लिए आरक्षित नहीं है। यह इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है।

विदेहमुक्ति : रामानुज मुक्ति के एक ही रूप विदेहमुक्ति या क्रममुक्ति को मानते हैं। उनके अनुसार जीव ईश्वरोपासना द्वारा क्रमशः मुक्त होता है। जीव देह के नष्ट होने के बाद देवयानमार्ग से बैकुण्ठ या गोलोक जाता है अर्थात् मोक्ष की अवस्था में जीव सांसारिक बन्धनों से मुक्त तो होता ही है, साथ ही वह पृथ्वी से ऊपर एक दिव्यलोक (बैकुण्ठ) में पहुँचता है और वहाँ ईश्वर के साथ परम आनन्द में रहता है।

2.6 सन्दर्भग्रन्थ

- रंगनाथानन्द, स्वामी, (2021), *उपनिषदों का सन्देश*, भारत : अद्वैत आश्रम, नागपुर।
- शंकराचार्य, (2023), *कठोपनिषद् शांकरभाष्य*, भारत: गीताप्रेस, गोरखपुर, पुनर्मुद्रण।
- Gambhirananda, Swami, (2022), *Katha Upanishad with the Commentary of Sankaracharya*, India: Advaita Ashram, Kolkata, West Bengal.
- शंकराचार्य, (2018), *बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य*, भारत: गीताप्रेस, गोरखपुर,

पुनर्मुद्रण।

- डॉ० राधाकृष्णन्, (1997), *उपनिषदों का सन्देश*, भारत : राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
- शर्मा, चन्द्रधर, (2018), *भारतीय दर्शन : आलोचना एवं अनुशीलन*, भारत : मोतीलाल बनारसीदास प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मिश्र, उमेश, (2018), *भारतीय दर्शन*, भारत : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाठक, राममूर्ति, (2017), *भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा*, भारत : अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद
- स्वामी, डॉ० किशोरदास, (1998), *भारतीय दर्शन और मुक्ति मीमांसा*, भारत : स्वामी रामतीर्थ मिशन, नई दिल्ली।
- लाड, अशोक कुमार, (1987), *भारतीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा*, भारत : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
- शुक्ल, आचार्य बद्रीनाथ, (2022), *सदानन्द कृत वेदान्तसारः*, भारत, मोतीलाल बनारसीदास प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- अपूर्वानन्द, स्वामी, (1988), *श्रीमद्भगवद्गीता*, भारत: अद्वैत आश्रम, नागपुर।
- लोहनी, आचार्य भास्करानन्द, (1997), *गीता का तात्त्विक विवेचन*, भारत: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- मिश्र, सत्यकाम, (2022), *अद्वैत वेदान्त में ज्ञान एवं भक्ति : दार्शनिक विमर्श*, भारत : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, जे० एस०, (2021), *अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका*, भारत : किताब महल, इलाहाबाद।
- सरस्वती, सत्यानन्द (भाषाटीकाकार), (2017) *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य*, भारत : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

2.7 बोधप्रश्न

1. गीता में स्थितप्रज्ञ के आदर्श की विवेचना कीजिए।
2. अद्वैतवेदान्त में बन्धन और मोक्ष को विस्तारपूर्वक व्याख्यायित कीजिए।
3. उपनिषदों में वर्णित मुक्ति के अर्थ पर प्रकाश डालिए।
4. रामानुज के अनुसार मोक्ष को व्याख्यायित कीजिए।
5. बौद्धदर्शन में बन्धन की विवेचना कीजिए।
6. जैनदर्शन में मोक्ष के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
7. चार्वाकदर्शन में मोक्ष के अर्थ पर प्रकाश डालिए।